

एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने-XII

कक्षा में सीखना-सिखाना (I)

फ़राह फ़ारूकी

हमारे स्कूलों में सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं पर अमूमन साहित्य नहीं मिलता। यह लेख सीखने-सिखाने की जीवंत प्रक्रिया के अनुभवों को आलोचनात्मक नज़रिए से पाठकों के समक्ष पेश करता है।

इस किस्त में कोशिश की गई है कि हम कक्षा के अन्दर झाँककर देखें कि वहाँ टीचर और बच्चों के बीच किस तरह का आदान-प्रदान चल रहा है। सीखने-सिखाने की कोशिशों और बारीकियों को देखने के अलावा यह भी समझें कि बच्चे कक्षा के माहौल, टीचर की समझी-नासमझी, जुमलेबाजी, तानों-तिशनों, “सबकु आमोज़” बातचीत से क्या संदेश लेते हैं। आप पाएंगे कि बच्चों की अपनी छोटी-छोटी कोशिशें, मज़ाक़, गहरे सवाल कैसे उनके सीखने और माहौल पर असर डालते हैं। मैं शुरू में ही यह कह देना चाहूंगी कि इस लेख का मक़सद अपने स्कूल के असातज़ा पर उंगली उठाना नहीं है बल्कि शिक्षा तंत्र की कमियों को करीब से देखने की कोशिश है। हमारे स्कूल के टीचर भी किसी और आम स्कूल के टीचर की तरह अपनी-सी भरपूर कोशिश करते हैं। हां, सीखने और बेहतर करने की गुंजाइश तो हमेशा रहती है। वैसे अब हमें केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.ई.) ने तमगा भी दे दिया है। सन् 2009 में, जब मैंने स्कूल का काम संभाला, हमारी बोर्ड क्लास यानी बारहवीं का रिज़ल्ट 54 फ़ीसदी था। सन् 2014 में वह बढ़कर 98 फ़ीसदी हो गया है। विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की कक्षाओं का तो सौ फ़ीसदी है। भई, हम तो इसे अपनी बड़ी कामयाबी मानते हैं, यह कुबूलने के बावजूद कि नम्बर आने और समझ बनने के बीच बस ऊपरी-सा रिश्ता है। लेकिन नम्बर या बोर्ड में कामयाबी एक सीढ़ी की शक़ल तो कभी-कभार ले ही लेती है। और इस सीढ़ी की ज़रूरत हमारे

लेखक परिचय

दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कॉलेज में बीएलएड कोर्स से जुड़ी रही हैं। आजकल जामिया मिलिया इस्लामिया के शिक्षा विभाग में प्रोफेसर हैं और दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी से संबद्ध हैं।

मज़दूर बच्चों से ज़्यादा और किसको होगी?

शुरू में ही एक और ज़िक्र ज़रूरी है, वह यह कि यहाँ इस्तेमाल किए गए नोट्स किस तरह इकट्ठे किए गए हैं। एक मैनेजर अगर खुद कक्षा में बैठकर अवलोकन करे तो जमात या कक्षा के ‘कुदरती’ माहौल का जाएज़ा लेना मुश्किल है, शायद नामुमकिन कहना ज़्यादा दुरुस्त होगा। चाहे मेरे और असातज़ा के बीच के ताल्लुकात कितने भी खुशगवार क्यों न हों लेकिन आखिर हूँ तो मैं मैनेजर ही। यानी, ताल्लुकात में एक तकल्लुफ़ (या गैर-बराबरी का एहसास) तो आ ही जाता है जिसका टीचर के काम पर असरअन्दाज़ होना लाज़मी है। इस वजह से क्लास से ये नोट्स जिन पर यह लेख आधारित है, मैंने खुद जमा नहीं किए हैं। यह करने में मेरे दो तुलबा ने मेरी मदद की। इन विद्यार्थियों में से एक मेरे लिए बुनियादी सामग्री जमा करने से पहले अपना संशोधन कार्य कर रही थीं। इसके लिए उन्होंने उन्हीं तीन कक्षाओं में अवलोकन किया था, जिनके तथ्य उसके बाद मेरे लिए इकट्ठा किए। जब तक वह मेरे काम पर आई तब तक, टीचर और बच्चे उनसे न सिर्फ़ बेतकल्लुफ़ हो चुके थे बल्कि उनकी मौजूदगी का एहसास उन्हें कुछ एक-दूसरे की मौजूदगी के एहसास जितना ही रह गया था। इन्होंने सातवीं, आठवीं, नवीं कक्षा के सामाजिक विज्ञान पढ़ाने वाली तीन टीचर की कक्षाओं का एक महीने तक मुशाहेदा किया। इन्हीं कक्षाओं में दूसरी रिसर्चर ने आगे का अवलोकन किया। बच्चों और टीचर को इन्हें कुबूलने और अपनी क्लास का हिस्सा मान लेने में बहुत कम वक़्त लगा। इसकी वजह यह रही कि वह किसी रिसर्चर की मौजूदगी के आदी से हो गए थे। इन्होंने भी एक महीने से कुछ ज़्यादा इन्हीं कक्षाओं में अवलोकन किया। तीसरी रिसर्चर किसी दूसरी यूनिवर्सिटी से

हमारे यहां शोध कार्य करने आई थीं और उन्होंने अपने नोट्स मेरे साथ बांटे। यह तमाम नोट्स जुलाई 2013 से फ़रवरी 2014 के बीच में जमा किए गए थे। इन तीनों रिसर्चर के साथ अवलोकन से पहले मेरी लम्बी बातचीत हुई कि किस तरह कक्षा में पढ़ने-पढ़ाने के दौरान हो रही बातचीत को दर्ज करना है। इस बारे में भी तय हुआ कि टीचर-बच्चों की बातचीत के अलावा वह किस तरह कक्षा के भौतिक और भावात्मक माहौल का चित्रण लिख सकती हैं। यह भी तय पाया कि जब वह बच्चों से वाकिफ़ हो जाएं तो बच्चों के सवाल और जवाब उन्हीं के नामों से दर्ज कर सकती हैं। इन शुरुआती फ़ैसलों के अलावा मैं इन तीनों से स्कूल-जमात अवलोकन के दौरान भी कई बार मिली और इनके लिखे हुए नोट्स पर इनसे बातचीत की। मैंने पाया कि इन तीनों के नोट्स में जिस तरह की तस्वीर इन तीन टीचर की जमातों के बारे में उभर रही थी वह काफ़ी यकसा थी। यानी, इन तीनों शोधकर्ताओं के नोट्स आपस में काफ़ी मिलते-जुलते थे। मुझे लगता है यह एक मुनासिब तरीका रहा। क्योंकि मैं खुद क्लास में मौजूद नहीं थी, जब तीन लोगों के नोट्स एक माइने में एक-दूसरे की वज़ाहत कर रहे थे, इसलिए मैं मुतमईन थी। तीनों कक्षाओं की तफ़सील, जिसे तीन अलग-अलग फ़ाइलों में रखा था, कई बार पढ़ा। इसके हिस्सों को उसकी खासियतों के हिसाब से अलग-अलग वर्गों में बांटा। इनमें शामिल है सामाजिक विज्ञान पढ़ाने का तरीका, कक्षा में 'अनुशासन' बरकरार रखने के पैतरे, मज़हब से दलील, बच्चों की कक्षा में हिस्सेदारी वगैरा। इनमें से हर एक वर्ग को छोटी श्रेणियों में बांटने की कोशिश की गई है।

मौजूदा फ़िस्त में सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के तरीके पर गौर करने की कोशिश की गई है। बाकी मुद्दों को अगली फ़िस्त में समेटने की कोशिश होगी। हमारे यहां सामाजिक विज्ञान की टीचर उससे जुड़े सभी मज़मून जैसे तारीख़, भूगोल, सामाजिक-राजनीतिक ज़िन्दगी, अर्थशास्त्र पढ़ाती हैं। यह एक मौका भी माना जा सकता है, इन आपस में जुड़े विषयों में रिश्ता और तालमेल देखने-दिखाने का। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में यह तजवीज़ हुई कि जो विषय अब तब नागरिक शास्त्र (Civics) कहलाता था उसका नाम ही नहीं बल्कि सिफ़त भी बदली जाए। यह कहा गया कि कक्षा 9 से 12 तक यह राजनीतिक शास्त्र के रूप में पढ़ाया जाएगा और कक्षा 6 से 8 तक इस विषय का नाम सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन रखा गया था। कक्षा 6 से 8 तक की किताब का नाम भी सामाजिक और सियासी ज़िन्दगी ही है। और इसमें इल्म-इ मआशरत (sociology), सियासी उलूम (Political Science) और अर्थशास्त्र (Economics) के नज़रियात को शामिल किया गया है। जहां नागरिक शास्त्र फ़रमाबरदार नागरिक बनाने की बात करता है वहीं सामाजिक और सियासी ज़िन्दगी (कक्षा 6 से 8 तक) और जम्हूरी सियासत (कक्षा 9) जैसी किताबें एक तनक़ीदी नुक़त-ए-नज़र रखने वाले ज़िम्मेदार शहरी बनाने की बात करती हैं। नागरिक शास्त्र को अग्रेज़ों के गुलाम हिन्दुस्तान की देन मानते हुए ये सोचा गया कि बेड़ियों से आज़ादी पाने वाले शहरी बनाएं जो मज़हब, जाति, जेण्डर और आर्थिक वर्ग के ढांचों में छुपी हिंसा को समझ पाएं और अपने शोषण के खिलाफ़ इकट्ठा होकर आवाज़ बुलन्द कर पाएं। साथ ही बच्चे अपनी स्थिति और उनसे जुड़ी घटनाओं को सुबूतों के साथ जोड़कर देख पाएं और विश्लेषण कर सकें। सामाजिक 'सच्चाई' को अलग-अलग परिप्रेक्ष्य के साथ जोड़कर देखने पर ढांचों की गैर-बराबरी की समझ पैदा करना भी किताब का मक़सद है। मैं यह कह देना चाहूंगी कि नीचे दिए गए संवाद इस पूर्वग्रह के साथ नहीं चुने गए हैं कि आपके सामने एक बदतर या बेहतर तस्वीर पेश की जाए। यह जतन किया गया है कि एक तरफ़ा तस्वीर आपको न दिखाई जाए, बल्कि संकेत या कोड इस तरह चुने गए हैं कि एक मुकम्मल तस्वीर आपके सामने उभर सके।

नीचे कोड के मुताबिक़ जमात के आंखों देखे टुकड़े पेश किए गए हैं और उनका विश्लेषण करने की कोशिश है। साथ ही यह भी दिया है कि कौनसी जमात में कौनसी टीचर के साथ किस सबक़ या बाब् को पढ़ने की कोशिश चल रही थी। यहां कक्षा 9 की तस्वीरें औरों की बनिस्वत ज़्यादा इसलिए चुनी गई हैं ताकि आपको एक सिलसिले का और एक तसव्वुर के पढ़ाने की 'कोशिश' का अन्दाज़ा हो पाए। सामाजिक विज्ञान इन ग़रीब, मुसलमान, मज़दूर बच्चों की पहचान खुद इनसे ढांचों और सामाजिक-राजनैतिक हालात से क्या करवा सकता है, इस सवाल से जूझने की भी कोशिश है।

I. ग़लत-अधूरे तसव्वुरात

क) टीचर: सुरजीत, कक्षा: 9, बाब्: हाशियेबन्दी, तिथि: 27.11.2013

(आगे “ट” टीचर के लिए और “ब” बच्चे के लिए इस्तेमाल किया गया है)

- ट: अच्छा कॉपी में या पेपर पर लिखते हो तो मारजिन छोड़ते हो न। इसे हिन्दी में बोलते है हाशिया।
ट: हाशिया किसे कहते हैं? वैसे तुम क्लास में आते हो या होते हो, मैन्टली नहीं होते।
ब: मैम, मारजिन को कहते हैं।
ट: हां, ऐसे ही हमारे समाज में कुछ लोग मारजिन पर होते हैं। समाज से अलग-थलग होते हैं। उनका पहनावा, उनका कल्चर, बोलचाल समाज की मुख्यधारा से कटा रहता है तो ऐसे लोगों को हाशिये पर कहते हैं। और हाशियेकार क्या होता है?
ब 1: मैम, जंगल में, अजीब कपड़े।
ब 2: मैम, उनको हमने टी.वी.पर देखा है, डिस्कवरी पे।
ब 3: मैम, उनकी भाषा भी अजीब होती है, मैम वह ऐसे बोलते हैं - टक, टुक, टको।
ट: तो ऐसे लोग क्या समाज में ढल पाते हैं?
ब: नो (No) मैम, वह अलग रहते हैं।
ट: कई लोग अपने पुश्तैनी घर बेच देते हैं और कुछ लोग नहीं। कौन लोग खाली कराते हैं?
ब: सरकार के लोग मैम, कांग्रेस के।
ट: आदिवासी, मोस्टली (Mostly) जंगलों में रहते हैं। अगर हम विदेश जाएं और तुम्हें अंग्रेज़ी न आती हो तो कैसा लगेगा?

ख) टीचर: अर्शी, कक्षा: 9वीं, बाब्: लोकतंत्र, तिथि: 16.7.13

- ट: जो क़ानून बनता है, वह नुमाइंदा हमारे बीच से जाता है। उसे चुनने की उम्र कितनी है?
ब: अट्टारह 18।
ट: हां, किसे वोट देते हैं?
ब: जिसकी समझ हो।
ट: हां, जो समझदार हो, सोच सके। पढ़ा-लिखा होना ज़रूरी है?
ब: हां।
ट: लेकिन ये है नहीं, भारत में नहीं है। वैसे होना चाहिए। (सोचते हुए और धीरे से बोलते हुए) क्योंकि पढ़ा-लिखा ज़्यादा सही डिसिशन ले सकता है। लोकतंत्र ऐसा शासन है जिसमे हमारा नेता हम खुद चुनते हैं। उसका फ़ायदा क्या है?
ब: (बच्चे चुप रहते हैं)
ट: लोकतंत्र में बोलने पर पाबंदी है?
ब: नहीं।
ट: हां, नहीं है, अपने व्यूज़ (Views), विचार सबके सामने रख सकते हैं। राजतंत्र में ऐसा होता है?
ब: नहीं।

ऊपर दिए गए मुशाहेदे में टीचर की नाकाफ़ी तैयारी की तकलीफ़दे शकल भी सामने आती है। अगर आप सुरजीत जी की क्लास में देखें तो वह न सिर्फ़ एक ग़लत अवधारणा या तसव्वुर बच्चों के सामने पेश कर रही हैं बल्कि बच्चों की किताब में दिए गए तर्क और नज़रिये को ही झुठला रही हैं। दूसरे मुशाहेदे में टीचर लोकतंत्र में आज़ादी जैसे आयाम को लिखने-पढ़ने के हुनर से जोड़ रही हैं। उनकी राय में इल्म और हुनर में न तो कोई फ़र्क है और न ही इल्म हासिल करना आर्थिक-सामाजिक ढांचों से जुड़ा हुआ है। इन मुशाहेदों से तो यह महसूस होता है कि टीचर ने बच्चों की किताब को भी सही तौर से नहीं पढ़ा वरना तो किसी ‘मुख्यधारा’ को क़ायम करने की बात न करतीं और

न ही हाशिये चूम रहे लोगों की तारीफ़ में यह बताती कि वे इस 'मुख्यधारा' से कटे हुए हैं। आदिवासी अगर 'कौमी मुख्यधारा' से कटने के लिए खुद ज़िम्मेदार हैं तो क्या इन मुसलमान मज़दूर बच्चों को भी अपनी हाशियेबंदी का गुनाह खुद ही क़बुल करना होगा? क्या इस तरह की 'तैयारी' के साथ क्लास में आना और 'पढ़ाना' टीचर और बच्चों के बीच की आर्थिक-सामाजिक गैर-बराबरी से जुड़ा हुआ है? इसकी वजह से पाठ्यक्रम और किताबों का यह ख़ाब कि बच्चे पूर्वग्रहों या तास्सुब से ऊपर उभरेंगे धरा ही रह जाएगा।

II. आलोचनात्मक या तनक़ीदी नुक़त-ए-नज़र की शदीद कमी

क) टीचर: अर्शी, कक्षा: 9वीं, बाब्: समकालीन विश्व में लोकतंत्र, तिथि: 16.7.2013

ट: आज इंडिया की डेमोक्रेसी (Democracy) को बेस्ट माना जाता है। आज जो फ़्रीडम (freedom) है वो और कहीं नहीं है। कभी भी कहीं भी जा सकते हैं। नोर्थ टू साउथ (North to South), ईस्ट टू वेस्ट (East to West), किसी भी जगह, और जगहों पर ये नहीं है। दूसरा तालीम का, हमें पढ़ने का अधिकार है। सबको राइट (right) है चाहे जो भी सैक्शन (Section) से हो। ये जो आपकी फ़ीस माफ़ है, ये भी उसी में है। और कौनसा है? फ़्रीडम टू...

ब: वर्क (Work)

ट: और कौनसा राइट (right) है?

ब: राइट टू रिलिजन (right to religion)

ट: हां, रिलीजस लाइफ़ (religious life) अपने धर्म को मानने का। अपनी ज़िन्दगी का फ़ैसला लेने का अधिकार है। ये राइट्स तो स्टेट ने दिए हैं तो ये तो सिर्फ़ लेने का हो गया। अब वापिस भी तो देना है। पब्लिक प्लेसेज़ (Public Places) का क्या करना चाहिए?

ब: अच्छा रखें।

ट: सरकार काम न करे तो बसेज़ (Buses) तोड़ना ठीक है?

ब: नहीं।

ट: प्रोटेस्ट (Protest) का अधिकार है, लेकिन बस तोड़ने का नहीं है। अधिकार ज़रिया है जिससे लोकतंत्र विकसित हो सके।

ख) टीचर: अर्शी, कक्षा: 9वीं, बाब्: संविधान निर्माण, तिथि: 3.8.13

ट: तीन साल तक लिखते रहे। उसमें दूसरे देशों के भी मसौदों को मंगवाया, उन्हें पढ़ा और तैयार किया। ये मेन (Main) था कि डेमोक्रेसी होगी, सैक्यूलर होगा, हुकूमत का कोई मज़हब नहीं होगा।

ब: सैक्यूलर मतलब?

ट: जिसका कोई एक धर्म न हो, सबके लिए बराबर है।

ब: बाबरी मस्जिद को बनारस में तोड़ दिया। पहले हिन्दुओं ने मस्जिद गिराई।

ट: तभी तो उसे तीन भागों में बांट दिया। ये तो संवैधानिक फ़ैसला था।

ब: वो 500 साल पुरानी थी।

ट: इसके बारे में बाद में बात करेंगे। संविधान की शुरुआत में ही कहा है (ज़ोर देते हुए), वी द पीपुल ऑफ़ इंडिया (We the people of India) कोई मज़हबी क़ानून न हो।

ब: कम्युनिस्ट हो?

ट: (नज़रअन्दाज़ करती हैं)

ब: अभी पुलबंगश के पास लड़ाई हो गई थी तो मुल्ला को पकड़कर जेल में डाल दिया।

ट: उसे छोड़ें। ये देखो। इसमें लिखा है कि हर व्यक्ति को जीने का अधिकार मिलेगा। सबको पूरा अधिकार है जीने का।

ब: (बच्चा कुछ फुसफुसाता है)

टः भई, इसे बाद में कर लेंगे। ये कहा है कि हर एक को मान्यता का हक है, कोई किसी की ज़िन्दगी न छीने। अपनी मर्जी से शादी करने का हक है।

आप ऊपर दिए गए हिस्सों को देखकर इस नतीजे पर पहुंचने की जल्दी में तो नहीं हैं कि टीचर बच्चों को कम से कम शामिल तो कर रही हैं और उनके लोकतंत्र पढ़ाने का तरीका लोकतांत्रिक है। आप ज़हानत-भरे सवाल करने का सेहरा तो हमारे बच्चों को ज़रूर बांध सकते हैं लेकिन उन सवालों से जूझ पाने की हिम्मत और तनक़ीदी नुकत-ए-नज़र की शदीद कमी हमारे टीचर हज़रात में नज़र आती है। जहां तक शामिल करने का ताल्लुक है वहां एक तरफ़ या तो ऐसे जवाबों II (क) को जगह मिलती है जिनकी पेशनगोई की जा सकती है या जवाब बस काला-सफ़ेद या फिर हां और न ही है। दूसरी तरफ़ बच्चों के आलोचनात्मक सवालों II (ख) से बचने, अहमियत न देने का जतन दिखाई पड़ता है। जहां बच्चे जम्हूरियत और धर्मनिरपेक्षता के माइने अपनी ज़िन्दगी से जुड़े तज़ुर्बात और हादसों से जोड़ते हुए ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे हैं वहीं टीचर उनका एक 'अज़ीम-उ-शान' क़ौम से ताररूफ़ करवा रही हैं जिसका 'कोई सानी नहीं है'। और कुछ अंदाज़ ऐसा है कि कह रही हों, भई, जब हमने (यानी मलका-ए-आलम) कह दिया है तो काफ़ी है, सवाल कैसे। यह टीचर और बच्चों के बीच का फ़ासला दिखाता है। बग़ैर तनक़ीदी निगाह के इस तरह समाजी उलूम को पढ़ाना ज़िन्दगी को समझने से एक तरह महरूम ही कर देता है क्योंकि यह ज़िन्दगी से जुड़े तज़ुर्बात को समझने की नज़र नहीं देता है। बल्कि 'इल्म' को ज़िन्दगी से जुदा कर एक मीनार में बन्द शय बना देता है। क्या इन बच्चों की गुर्बत और मजबूरी का ताल्लुक इनकी मज़हबी पहचान से भी है? क्या समाज का तास्सुबी रवय्या इनके मौकों को बेड़ियों में तबदील कर देता है? क्या मौकों की कमी, सरकारी नीतियों और बाबरी मस्जिद की शहादत में आपसी रिश्ता है? इन सवालों का दम घोटना ही क्या बेहतर होगा ताकि कुछ की तरक़की और बाक़ी की मोहताजी का सिलसिला बरकरार रहे?

III. अच्छी-सही मिसालों की कमी

क) टीचर: अर्शी, कक्षा: 9वीं, बाब्: लोकतंत्र क्या? लोकतंत्र क्यों?, तिथि: 25.7.2013

टः अब्राहम लिंकन एक बहुत बड़े अमेरिका के पोलिटीशन थे। उनकी परिभाषा बहुत अहम् है। उन्होंने कहा डेमोक़्रमसी ऐसी सरकार है (जो) लोगों के द्वारा, लोगों की, लोगों के लिए है। यानी, By the people, of the people, for the people. अब यहां कह रहे हैं कि क्या परिभाषा अलग हो सकती है। बिल्कुल ये बदलती रहती है जैसे प्यार की है - मां के साथ अलग है, भाई-बहन के साथ अलग है, पति का वाइफ़ (wife) के लिए अलग माइने हैं, मेरा आपके साथ जो है उसके बिल्कुल अलग ही माइने हैं। डैफ़िनिशन वक्त के साथ तबदील हो जाती हैं। परिस्थितियों के हिसाब से यह बदलती रहती हैं...

ख) टीचर: सुरजीत, कक्षा: 8वीं, बाब्: क़ानूनों की समझ, तिथि: 19.7.13

टः ...सरकार की आलोचना की। कभी ये सुना है? यूज़ किया है?

बः नहीं सुना।

टः इसे ऐसे करो, किसी व्यक्ति या चीज़ में कमियां निकालना या उसे अस्वीकार कर देना, आलोचना कहलाता है। चलिए, विकास क्रम। एक बात बताओ विकास का मतलब क्या है?

बः बढ़ना।

टः शाबाश, मतलब, पहले कम था अब ज़्यादा हो गया। जैसे, पहले यातायात के साधन क्या थे? बैलगाड़ी ही। अब दिखती है?

ब1: नहीं।

ब2: दिखती है गांव में।

टः हां और क्या है आज?

ब1.2.3: जहाज़, नाव, आटो, रिक्शा, हेलीकॉप्टर।

टः अब विकास हुआ।

ब: यैस (Yes) मैम ।

ट: मतलब विकास हुआ। लगातार बढ़ोतरी हुई। इसे विकास क्रम कहते हैं। सरल से जटिल रूप के विकास को विकास क्रम कहा जाता है। समझ आ गया?

ब: यैस मैम ।

एक पेचीदा या जटिल अवधारणा को आसान बनाने के चक्कर में गैर-मुनासिब मिसालों का देना एक तरह इसकी समझ के साथ नाइंसाफी ही करना हुआ। डेमोक्रेसी जैसे तसव्वुर की समझ तारीख़ और सामाजिक हालात के साथ बदलती है। क्या हमारे मुल्क की आज़ादी और जम्हूरियत की तारीख़ में ‘मजदूरों की आज़ादी’ के माइने बदले हैं? क्या जम्हूरियत इन मज़दूर बच्चों को बराबरी का हक़ मांगने लायक़ आवाज़ दे पाएगी? या फिर झण्डे का सिजदा करने वाले बेआवाज़ कैदी बना देगी? इसी तरह विकास क्रम की समझ इस ग़लत मिसाल की नज़र ही हो गई लगती है। अगर इस मिसाल को हम अलग-अलग आर्थिक-सामाजिक वर्गों की तरफ़ इंसाफ़ की सिफ़ारिश के तौर पर देखें तो यह और ज़्यादा कमज़ोर जान पड़ती है। क्योंकि इसमें विकास को एक तकनीकी ‘तरक्की’ के तौर पर ही देखा गया है। इसके माइनों को लोगों और समाज में बराबरी लाने के जतन से नहीं जोड़ा गया है। यानी, ‘विकास’ के फल से महरूम बच्चों से विकास की बात कुछ इस तरह की जा रही है कि वो अपनी इस महरूमी पर सवाल भी न उठा पाएं।

IV. सिर्फ़ तथ्यों पर ज़ोर न कि तसव्वुरात पर

टीचर: सुरजीत, कक्षा: 8वीं, बाबू: क़ानूनों की समझ, तिथि: 25.07.2013

कानूनों की समझ बाबू में कोशिश है यह बताने की कि किस तरह के मुद्दे क़ानून के दायरे में आते हैं। इस सवाल पर ख़ासतौर से ज़ोर है कि घरेलू हिंसा को ‘ज़ाती’ मामला मानकर नज़रअन्दाज़ करना कहाँ तक दुरुस्त है?

ट: एक लेडी का क्या दुख़ था?

ब: उसके बहु-बेटे मारते थे।

ट: दूसरी का?

ब: उसका पति मारता था।

ट: और कौन अच्छे से पढ़ेगा? (दूसरा बच्चा पढ़ता है)

ट: किसमें? उन्नीस सौ निन्यानवे। कब शुरू हुई? 1990 में। इसका प्रारूप-खाका कब तैयार किया? किसने किया?

ब: डॉक्टर, वैज्ञानिक।

ट: ये वैज्ञानिक सिर्फ़ साइंस वाले नहीं हैं, ये हैं जो मुद्दों को समझते हैं। इन्होंने घरेलू मुद्दों के बारे में लिखा और प्रारूप तैयार किया। (फिर से पढ़ना शुरू)

ट: कौनसी चीज़ें आती हैं? आर्थिक। उसे बैंक का खाता भी इस्तेमाल नहीं करने दे रहे थे। बैंक में जो पेंशन आती है वो भी नहीं दे रहे थे। शारीरिक, मौखिक, यौन रूप से या भावात्मक रूप से किसी को तंग करना। (बच्चा पढ़ता है)

ट: 1990 में आवाज़ उठी। 1999 में वकीलों ने प्रारूप तैयार किया। कब पेश हुआ? 2002 में। क़ानून कौन बनाता है?

ब: संसद।

ट: इसके दो सदन कौनसे हैं?

ब: राज्य सभा और लोक सभा।

ट: ये किसका अंग है। केन्द्र या राज्य?

ब: केन्द्र।

ट: हां, ये 1990 से शुरू हुआ और 2002 में संसद में पेश किया। विधेयक में वे बातें, मुद्दे शामिल किए जो महिला संगठनों व महिला आयोग ने उठाए। जैसे दहेज, घरेलू हिंसा, बच्चों की कस्टडी है उसे भी सोचना चाहिए।

कानून बनाने के लिए संसद में कमेटी बनाई जाती है, स्थायी पक्ष-विपक्ष में विचार होकर तब संसद में आता है। फिर लोक सभा और राज्य सभा में जाता है। और अंत में किसके पास?

ब: राष्ट्रपति।

ट: हां, राष्ट्रपति की अनुमति से कानून बनता है।

ऊपर दी गई तस्वीरें अपने-आपमें बहुत कुछ बयान करती हैं। सामाजिक विज्ञान पढ़ने का मतलब समाज में घटे या घट रहे वाक्यात, हादसे, क्रिस्सों की वजह तलाश करना या फिर उन वजहों को सुबूत से पुख्ता करना नहीं है बल्कि तिथि-तथ्य रट लेना ही इसे पास करने या फिर लांघ लेने की कुंजी मानी जा रही है। अगर आपके ज़हन में सामाजिक विज्ञान के द्वारा समाज को समझने-बदलने का ख्याल कहीं छुपा बैठा है तो उसे निकाल फेंकिए। यह तस्वीरें सिर्फ स्कूल की सच्चाई नहीं हैं बल्कि ज़्यादातर स्कूलों का सच दर्शाते हैं। अगर फिर भी यह ज़रूरत आप करना चाहती हैं तो उसका तरीका भी आपको यह तफ़्सील सुझा सकती है। यह दर्शाता है कि इस तरह की पढ़ाई से क्या हासिल है और क्या नहीं है तो इन्हीं जाने-बूझे उदाहरणों का इस्तेमाल टीचर हज़रात से ज़ि़रह करने में किया जा सकता है।

ऊपर दी गई तमाम तस्वीरें (1 से 4 तक) देखकर शायद कुछ पाठकों को लगे कि हमारे टीचर दक्षिणपंथी हैं। लेकिन ऐसा है नहीं। अफ़सोस तो इस बात का है कि अर्शी जैसे टीचर सियासत के दांव-पेच, विचारधारा और असर को समझते ही नहीं हैं। इस वजह से किसी विचारधारा के हिमायती नहीं हैं और उसकी नुमाइंदगी नहीं करते। यह करने न करने से एक माईने में वे मौजूदा हालात को बरकरार रखने में योगदान ज़रूर देते हैं। यह कैसा दबाव है, कहां का है, क्यों है जो सर उठाकर जीने नहीं देता। ख़ैर, अर्शी मैडम को तो मुसलमान होने का यह बोझ उठाना ही होगा। अपने मुल्क से वफ़ा का सुबूत लगातार देते रहना होगा। हां, यह सवाल भी उठाया जा सकता है कि जो मौजूदा सामाजिक-राजनैतिक आख्यान है वह चुपके से स्कूल की दीवारों के अंदर कैसे अपनी जगह बना लेता है।

V. बहस और सुबूत भी कभी-कभार शामिल हो ही जाते हैं

टीचर: सीमाब, कक्षा: 7, बाब्: जेण्डर, तिथि: 17.7.13

ट: कौन बताएगा की आज के समाज में भी भेदभाव है या नहीं?

ब1: नहीं।

ब2: है।

ट: अफ़जल बताओ अगर है तो कैसे?

ब: लड़कों को बाहर निकालने देते हैं और लड़कियां घर में ही रहती हैं।

ट: आपकी बहन है?

ब: (हां में सिर हिलाया)

ट: वो कितने बजे तक घर से बाहर जा सकती है? बाहर जाती है?

ब: अम्मी के साथ ही जाती है।

ट: देखो सिर्फ अम्मी के साथ ही जाती है। यह कन्डीशन लग गई।

ट: (दूसरे बच्चे से) तुम्हारी बहन है?

ब: (हां में सिर हिलाया)

ट: कितनी बड़ी है?

ब: दूसरी में।

ट: वो कहां पढ़ती है?

ब: सरकारी में।

ट: वो सरकारी में और आप यहां। वो सभी खेल खेलती है।

ब: (बच्चे ने हां में सिर हिलाया)

टः उसे भी खाने में वही सब चीज़ें मिलती हैं जो आपको?

बः (हामी भरता है)

यहां पर बच्चों की ज़िन्दगी से उदाहरण लेकर जेण्डर भेदभाव समझाने की कोशिश है। इस तरह बच्चों को सामाजिक विज्ञान अपनी ज़िन्दगी से जुड़ा हुआ महसूस होगा। कहीं कुछ सुराग, हालात और ढांचों को हिलाने-डुलाने का भी शायद चुन लें। जबकि इस बातचीत में भी टीचर के बच्चों के बारे में या उनकी सामाजिक श्रेणी के बारे में पूर्वग्रह साफ़ दिखते हैं। जैसे यह दर्याप्त करना कि क्या खाना तुम्हें और तुम्हारी बहन को एक जैसा मिलता है या फिर अलग-अलग। अफ़सोस इस कक्षा में लड़कियां नहीं हैं वरना उनसे बातचीत ज़्यादा मददगार साबित होती।

VI. बच्चों की ज़िन्दगी से जुड़े मुद्दे और विषय से जुड़ाव

टीचरः अर्शी, कक्षाः 9वीं, बाबूः निर्धनताः एक चुनौती, तिथिः 1.2.2014

अर्शी मैडम ही सामाजिक विज्ञान से जुड़े और मज़मून जैसे अर्थशास्त्र पढ़ाती हैं। इसमें निर्धनताः एक चुनौती जैसे पाठ हमारे बच्चों की ज़िन्दगी का आईना है। चलिए देखें कि यह कैसे पढ़ाए या निपटाए जाते हैं और क्या जम्हूरियत के सबक से इनका कोई रिश्ता जोड़ा जाता है या नहीं।

टः पॉलिसीज़ (Policies) तो अब भी हैं पर आबादी बढ़ गई है। विडो रिमैरिज (Widow remarriage) से पॉपुलेशन एक्सप्लोज़न (Population Explosion) हो रहा है। बेहतर मैडिसिंस (Medicines) आ गई हैं जिससे डैथ रेट (Death Rate) कम हो गया है और आबादी बढ़ गई। निर्धनता का दूसरा कारण है अपनी ज़मीन का न होना... मेन वजह ग़रीबी की बाल श्रमिक है, बच्चे काम करते हैं।

बः चाइल्ड लेबर (Child Labour)

टः बचपन से ही काम करते हैं। उनको कोई एजुकेशन भी नहीं मिल पाती, सपने भी टूट जाते हैं। उम्र से पहले ही बड़े हो जाते हैं। उसके बाद है ख़राब सेहत। अगर सेहत ख़राब रहेगी तो इंसान काम कैसे करेगा? सेहत ठीक तो सब ठीक।

ख) टीचरः अर्शी, कक्षाः 9वीं, बाबूः राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की जीवन रेखाएं, तिथिः 27.1.2014

टः अगर कोई पढ़ नहीं सकता या किसी कारण से आगे नहीं पढ़ पाता तो उनके लिए टेक्निकल एजुकेशन (Technical Education) बहुत फ़ायदेमंद होगी।

बः (सोचते हुए) गैराज में मैकेनिक (Mechanic) का काम या इलैक्ट्रीशियन (Electrician) का काम भी वो कर सकता है।

टः (पीछे बैठे बच्चों की तरफ़ इशारा करते हुए) अगर रोज़ तुम्हें 200 रुपए मिलते रहें तो फ़ायदेमंद होगा या नहीं?

बः नहीं।

टः क्यों नहीं? (कुछ ज़ोर से बोलते हुए)

बः पैसे तो रोज़ खर्च हो जाएंगे।

टः पर फ़ायदा तुम्हें होगा या नहीं?

बः फ़ायदा तो होगा अगर 200 रुपए फ़िक्सड होंगे तो फ़ायदा तो ज़रूर होगा।

टः ग़रीबों का बीमा कराया जाए तो फ़ायदा होगा या नहीं?

बः मैम, आज रिक्शा वाले ने पचास रुपए ले लिए।

टः यह तो बहुत ज़्यादा है, तुम्हारा तो शोषण हो गया।

सामाजिक और सियासी ज़िन्दगी तथा अर्थशास्त्र जैसे मज़मूनों में ताल्लुक़ दिखा पाना तो दूर ठहरा बल्कि अर्शी मैडम के बच्चों के साथ रिश्ते पर भी शायद आप सवाल उठाना चाहेंगे। जैसे सामने बैठे बच्चों का मज़दूर बच्चों में शुमार ही नहीं है बल्कि लगता है कि एक अजीबो-ग़रीब मख़लूक़ की बात हो रही है जो इस दुनिया की है ही नहीं। साथ ही एक बेनियाज़ तरीक़े से इन बच्चों के मुस्तक़बिल के बारे में पेशनगोई जारी है कि ऐसे बच्चे पढ़ नहीं पाते और

उनकी सेहत भी खराब हो जाती है। बात कुछ इस अन्दाज़ से हो रही है कि महसूस होता है कि बच्चे खुद अपनी इस 'हरकत' के लिए ज़िम्मेदार हैं। अगर आप इनमें से एक बच्चा होते तो उस वक़्त आपके क्या जज़्बात होते? गुस्सा, डर, घबराहट, कोफ़्त, शर्मिंदगी, अलगाव, हिम्मत हारने का एहसास, घुटन या कुछ और। यह ही नहीं बल्कि ज़िन्दगी की जंग लड़ रहे इन बच्चों को अर्शी 'आसान रास्ता' भी सुझा देती हैं। टैक्निकल एजुकेशन का या फिर कहिए कि मज़दूरी के भंवर में फंसे रहने का। अर्शी जी की यह 'नादानी' बच्चों को सिर उठा के जीने की हिम्मत कहां दे पाएगी। शोषण के माइनों को मजाक में उड़ा देने वाली इन उस्तानी से क्या यह पूछना ज़ायज़ होगा कि हम सब बच्चों के शोषण में हिस्सेदार क्यों हैं? दिलचस्प बात यह है कि नवीं जमात की इस किताब के पहले बाबू की शुरुआत, चिले के राष्ट्रपति आयेदे के इस जुमले से हुई है, "मेरे मुल्क के मेहनतकश मज़दूरो...."। आगे इस बाबू में बल्कि पूरी किताब में ही मेहनतकशों को संगठित होने और शोषण के खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द करने के लिए उकसाया गया है। हाय, जब किताबें अच्छी बन पाईं तो असातज़ा की नाकाफ़ी तैयारी ने हमें मात दे दी।

तीनों टीचर की कक्षाओं की तस्वीरें देखने पर एक पैटर्न या तरतीब साफ़-सी दिखती है। सुरजीत की कक्षाओं में गैर-मुनासिब तसव्वुरात, मिसालें, पूर्वग्रह अकसर नुमाया हो जाते हैं। साथ ही वह एक गुंथा हुआ सिलसिलेवार जाएज़ा भी नहीं पेश कर पाती हैं और तस्वीरें बिखरी हुई-सी महसूस होती हैं। अर्शी मैडम की कक्षाओं की तारीफ़ तीनों ही शोधकर्ताओं ने की। शायद इसकी वजह यह रही कि वे बच्चों से एक रिश्ता बनाने की कोशिश करती हैं और इसमें कुछ हद तक कामयाब भी हैं। इनकी कक्षाओं का माहौल अकसर खुशगवार-सा रहता है। यह 'रिश्ता' और 'खुशगवार माहौल' जब एम.ए. एजुकेशन (M.A. Education) के तुलबा को 'अच्छा पढ़ाने' का गुमान दे सकता है तो आप सोच ही सकते हैं कि बच्चों के लिए यह कितना ख़तरनाक साबित हो सकता है। लेकिन ऊपर दी गई बातचीत से आपको साफ़ ज़ाहिर हो गया होगा कि इनकी कोशिश कहीं दूर-दूर तक एक तनकीदी नुक़त-ए-नज़र पैदा करने की नहीं है बल्कि यह कहना दुरुस्त होगा कि इनका खुद का नज़रिया ही इससे महरूम है। सीमाब मैडम की कक्षाओं में किताब की मदद ज़्यादा ली जाती है। अच्छा ही है क्योंकि इस्तेमाल हो रही किताबें अच्छी लिखी हुई हैं, बेहतर ही होगा अगर बच्चे उनके इस्तेमाल से कुछ फ़ायदा उठा लें। सीमाब की कक्षाओं में तसव्वुरात या अवधारणा को दर्जों में नहीं बांधा जाता है। जैसे तज्ज़ियाती नज़र से जेण्डर को देखने के बाद कुछ आयामों को नुमाया करके उन पर एक मिली-जुली समझ पैदा करने की कोशिश हो सकती है जैसे: लड़का, लड़की से फ़र्क़ अपेक्षाएं, अलग-अलग ज़िम्मेदारियां और काम, घरेलू काम भी है काम, वगैरा। पूरा पाठ पढ़ाने के बावजूद एक गुंथी हुई परतों वाली आमोज़िश से इनकी कक्षा और बच्चे दूर ही हैं।

शायद आप इन असातज़ा की अपनी तालीम के बारे में सोच रहे होंगे। सुरजीत ने तारीख़ में एम.ए. किया है और साथ में बी.एड. भी किया है। अर्शी ने दो मज़मूनों-राजनैतिक विज्ञान और इकोनॉमिक्स में एम.ए. किया है और साथ ही बी.एड. भी किया है बल्कि बी.एड. तो लाज़मी है ही सबके लिए चाहे इससे कुछ सीख पाएं या नहीं। सीमाब ने फ़ारसी पढ़ी है। उनका सामाजिक विज्ञान पढ़ाने का किसी तरह का तालीमी तज़ुरबा नहीं है। तालीमी ऐतबार से अगर देखें तो इन तीनों की आमोज़िश में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है। बस पैटर्न या तरतीब कुछ फ़र्क़ ज़रूर है। यह हमारे टीचर बनाने के प्रोग्रामों पर भी एक गहरा कथन है। इन तीनों ही असातज़ा को तकरीबन पढ़ाने का 15 साल का तज़ुर्बा है।

अगर हम बच्चों की बात करें तो पास होने, 'सीढ़ी' चढ़ने और समझ बनने में कोई ख़ास ताल्लुक़ न तो है और न ही मुमकिन है। जम्हूरी सियासत के बारे में नवीं कक्षा की एनसीईआरटी (2009) की किताब में कई पाठ हैं। कई महीने इन बाबू पर कक्षा में बातचीत और ग़ौर रहा। मैंने कई टुकड़े जो कि जम्हूरियत के तसव्वुर से जुड़े हैं ऊपर पेश किए हैं। इनमें से दो 16.7.2013 की बातचीत से लिए गए हैं और बाकी दो 3.8.2013 और 25.8.2013 से लिए गए हैं। इन्हें देखकर आप बख़ूबी अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि यह किसी किस्म की सिलसिलेवार और कड़ीनुमा समझ तो पैदा नहीं कर सकती है बल्कि, जम्हूरियत के ढांचों को आलोचनात्मक नज़र से देखने और उसका जुड़ाव अपनी ज़िन्दगी के साथ समझने की सख़्त कमी है। इनमें से कुछ ही बच्चे ग्यारहवीं कक्षा में आर्ट्स पढ़ेंगे। पता नहीं इन बच्चों की

ढांचों और अपने तालीम और ज़िन्दगी के जुड़ाव के बारे में कभी समझ बन भी पाएगी या नहीं। फिर स्कूल कहां समाज को बदलने वाले इदारे के रूप में काम पा रहा है? हां, कमाने के 'औज़ार' के रूप में शायद इन बच्चों को तैयार कर पाए। एक और चीज़ जो यहां कहनी ज़रूरी है वह बच्चों की हाज़री के बारे में है। अगर टीचर एक कड़ीनुमा समझ की कोशिश भी करे तो बच्चों की रोज़ स्कूल न पहुंच पाने की मजबूरी आड़े आ जाती है। खुद से पढ़ने-समझने की तरफ़ न रुचि है न रुझान और न ही फुर्सत। स्कूल के समाज को बदलने का ख़्वाब तो बस ख़्वाब ही रह जाता है।

आप यहां दी गई सामाजिक विज्ञान की तदरीस को अगर अपनी (या यहां बच्चों की) पहचान को समझने में मदद के ऐतबार से देखें तो हारी हुई महसूस होती है। अगर बच्चे अपनी मज़हबी पहचान और राज्य या समाज के सुलूक को लेकर परेशान हैं तो उनसे बुलन्द आवाज़ में कहा जा रहा है, II (ख) "वी द पीपल ऑफ़ इण्डिया (We the people of India)" यहां जिस तरह वी (we) का इस्तेमाल किया गया है, मालूम होता है कि सबको एक ही रंग में रंग दिया हो। काश, यह बराबरी का रंग होता। इसी तरह यह ठूंसने की कोशिश है II (क) कि 'सबको' हक़ हासिल हैं। यहां तक कि हक़ को एहसान जताया जा रहा है यानी जो बच्चों की फ़ीस माफ़ है वह राज्य उनका 'हक़' अदा कर रहा है। अब कोई इनसे पूछे जो हक़ छीन लिए गए हैं उसका सेहरा किसके सर बांधा जाए? पूंजीवादी नीतियों पर, राज्य की मिची आंखों पर या समाजी ढांचों में छुपी सांस्कृतिक हिंसा पर? खैर, स्कूल तो ढांचों पर सवाल उठाने के काबिल बच्चों को कहां बनाता है! आपने हमारी सुरजीत के सुर में 'विकास' की परिभाषा तो पढ़ ही ली है III (ख)। अब चाहे यह 'विकास' हमारे बच्चों से कतराता हुआ ही क्यों न गुजर जाए। सवाल उठाएं भी तो कैसे लोकतंत्र या कानून बनने की प्रक्रिया कुछ ऐसे पढ़ाई जाती है (IV) कि लगता है कि संसद में बैठे देवताओं और किसी बादशाह की अनुमति से बन रहा हो।

बल्कि स्कूल इन गरीब-मज़दूर-मुसलमान-बच्चों की उंगलियां खुद इनके लहू में डुबोने का काम ज़रूर अंजाम देता है। हमारे सालाना जलसे के मेहमान-ए-खुसूसी ने अपनी तक्रीर में बुलन्द आवाज़ में एक किस्सा सुना डाला: "एक नामी-गिरामी आई.ए.एस. (IAS) अफ़सर थे, उन्हें सारी सहूलतें मिली हुई थीं - बंगला, गाड़ी, वगैरा। एक दिन रात में उनकी बेटी ने उनसे पूछा, 'डैडी हम तो आराम से ए.सी. में सो रहे हैं जबकि हमारे दरबान बेचारे रात भर जागते हैं'। डैडी ने जवाब दिया, "आराम से सो जाओ जब मैं पढ़ाई की ख़ातिर रातों को जाग रहा था तब यह आराम से सो रहे थे।" काश, अपने-आपको कुसूरवार ठहराना बताने की बजाय स्कूल इन्हें इन्हीं की मिसाल लेते हुए ढांचों पर उंगली उठाना सिखा पाता। हां, साथ में यह भी ढाढ़स देता कि सवाल उठाना 'देशद्रोही' होना नहीं है बल्कि देशप्रेम का सुबूत है। सुरजीत जी के सुर में खुद इन्हें ही इनके हाशियों के लिए ज़िम्मेदार ठहराने की बजाय ढांचों को समझने-बदलने के काबिल क्या तालीम इन्हें बना पाएगी? रात में कारख़ानों में जागने के बावजूद मज़दूरी-मजबूरी की ज़िन्दगी लगातार उनकी बेडियां क्यों बनी है इसका जवाब ढूंढने के लायक़ तालीम क्या इन्हें बना पाएगी?

अगर आप यह समझ रहे हैं कि मैं कटघरे में अपने असतज़ा को खड़ा करूंगी तो ऐसा बिलकुल नहीं है। हमारे टीचर भी शिक्षा तंत्र का शिकार ही हैं। बी.एड. जैसे कोर्स ने पता नहीं क्या और कैसे सिखाया। साथ ही वे खुद चुप्पी की ज़बान सीख चुके हैं। मैनेजमेंट की धमकियां, ए.सी.आर. (ACR) का रौब, सरकारी महकमे का पांच फ़ीसदी का 'एहसान', परिवार की बंदिशें। सामाजिक विज्ञान ने न तो उन्हें ज़िन्दगी के ताले की चाबी दी और न वे यह कुंजी बच्चों को थमा पा रहे हैं।

अगर उम्मीद की किरण आप अभी भी थामे हैं तो चलिए शिक्षा के ज़रिये या फिर तज़्ज़ियाती तालीम (Critical education) के ज़रिये ढांचों पर हमला बोलने की कोशिश करते हैं। चलिए, कम से कम शिक्षा तंत्र पर हल्ला बोल कर शुरुआत तो करें। ♦

(मैं बहुत शुक़रगुज़ार हूं इन तीन तुलबा की जिन्होंने कक्षा-अवलोकन के नोट्स मेरे लिए इकट्ठा किए - कविता, मनीशा इक्का जिन्होंने जामिया से एम.ए. किया है और आयूशी भट्ट जो अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी से हैं।)